Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 2, February-2019, ISSN 2230-7540

राष्ट्रीय रक्षा नीति का उदय एवं विकास

Naresh Kumar*

M.A. in Political Science (UGC NET)

शोध आलेख:- *"इतिहास इसका प्रमाण है कि प्रत्येक सभ्यता में एक प्रभावी व श्रेष्ठ शक्ति रही है। यह श्रेष्ठ शक्ति विकसित करने के पीछे रक्षा विषयक धारणा का प्रमुख स्थान रहा है। यदि इस श्रेष्ठ शक्ति को अन्य किसी राज्य ने चुनौती दी तो इनमें युद्ध उस समय तक हुआ है जब तक यह शक्ति प्रायः नष्ट नहीं हो गई।" "विश्व के सभी साम्राज्यों का उत्थान और पतन शक्ति से हुआ है। राज्य पर पड़ने वाले संकट का सामना यदि सैन्य शक्ति बल की दृष्टि से निर्बल हो तो विनाश व विघटन निश्चित होता है। राज्यों को विरस्थायी स्वरूप प्रदान करने की कामना ने ही राष्ट्रों की रक्षा के विकास की राह दिखाई है।"*

मुख्य शब्द:- *विदेश नीति, राजनय, गुटनिरपेक्षता, सैन्य शक्ति बल, संयुक्त राष्ट्र संघ, परमाणु परीक्षण।*

----------X----------

शोध प्रविधि:-

इस शोध पत्र को तैयार करने के लिए आंकड़े/तथ्य द्वितीयक स्त्रोतों से जुटाए गए हैं। इस शोध पत्र में ऐतिहासिक घटनाओं के साथ वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखकर तर्क प्रस्तुत किए हैं जो शोधकर्ता ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों तथा ज्ञान से प्राप्त किए है। ऐतिहासिक, वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक विधि का प्रयोग है। शोध सामग्री प्रसिद्ध पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं तथा समाचार पत्रों से प्राप्त की गई है।

युद्ध की अनिवार्यता तथा शांति और सुरक्षा की कामना

रक्त रंजित युद्धों का इतिहास जितना प्राचीन है उतना ही प्राचीन इतिहास शान्ति और सुरक्षा का भी है। देखा जाए तो इतिहास में युद्धों की श्रृंख्ला कभी समाप्त नहीं हुई है। प्राचीन काल में जब मानव विकास की बाल्यावस्था में था, तब से उसके मन में अपने अस्तित्व तथा परिवेश को सुरक्षित करने की कामना विद्यमान रही है। इसी लालसा ने मानव मस्तिष्क में युद्ध के साथ बराबरी का शान्ति रूपी सिंहासन प्रतिष्ठित किया है।

दुनिया के राष्ट्र यह मानते है कि विवादों को समझौतों से सुलझाना एक अच्छा तरीका है किन्तु वे यह भी उसी विश्वास से समझते है कि हथियारों का जवाब हथियार ही है।

अर्थात् "युद्ध मानव का और मानव युद्ध का सबसे गहरा दोस्त है। दोनों एक दुसरे की जुदाई बर्दाश्त नहीं कर सकते।"

इस प्रकार जब युद्ध को समाप्त नहीं किया जा सकता तथा इच्छानुसार टाला नहीं जा सकता तो शस्त्रों पर प्रतिबन्ध किस प्रकार लगाया जा सकता है? अतः यही निष्कर्ष है कि-

"युद्ध आवश्यक है, शस्त्र आवश्यक है और रक्षा प्रतिरक्षा नितान्त आवश्यक है।"

याद रखना चाहिए कि युद्ध और शान्ति दोनों ही मनुष्य के मानसिक निर्णय हैं। शस्त्रीकरण शान्ति के मार्ग में विघ्न पैदा कर सकता है किन्तु यह कहना कठिन है कि यह शान्ति को समाप्त कर देता है। शान्ति शस्त्रों से नष्ट नहीं होती। कभी-कभी शस्त्रों से भी शान्ति प्राप्त हो सकती है।

एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण करना चाहता है किन्तु उसे मजबूर होकर शान्ति के मार्ग का अनुसरण करना पडेगा क्योंकि वह जानता है कि उसके पास भी उतनी ही शक्ति है जिसके कारण युद्ध से क्षति ही होगी लाभ नहीं। इस प्रकार शस्त्रीकरण शान्ति में सहायक है।

राष्ट्र अपनी रक्षा नीति के संदर्भ में साधनों के विकास के माध्यम से इसिलिए अधिक जागरूक रहते हैं क्योंकि शक्ति की साम्यता सदैव ही शान्ति के लिए उपयोगी सिद्ध हुई- बचाव के लिए और जवाब के लिए भी। यही दो कारण और

www.ignited.in

उनके परिणाम सदैव से राष्ट्रों को आन्दोलित करते रहे हैं जिससे उनकी रक्षा नीति का उदय और विकास होता है और राष्ट्र अपनी सुरक्षा के प्रति आश्वस्त हो जाता है।

रक्षा की आवश्यकता और राष्ट्रीय रक्षा नीति का विकास

यह सर्वविदित है कि किसी राज्य की स्वतंत्रता और प्रभुसत्ता बनाए रखने के लिए सशस्त्र सेनाओं का रखना राज्य का एक आवश्यक कार्य रहा है। शक्ति का स्वामी होने के कारण राज्य ही व्यवहारतः सभी संस्थाओं में सर्वोपरि माना जाता है। प्राचीन काल के उपलब्ध साहित्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि युद्ध के द्वारा अपने प्रदेश की रक्षा करने का तन्त्र राज्य का अभिन्न अंग होता था तथा राज्य के अस्तित्व तथा समाज में शान्ति व सुव्यवस्था बनाए रखने के लिए राज्य सैन्य बल, व्यवहार विधि एवं न्यायालय आदि का गठन करता था। अपने विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रिपब्लिक' में प्लेटों ने संरक्षक श्रेणी द्वारा राज्य की रक्षा करने की आवश्यकता की पुष्टि की है। क्लीमेन्सी की यह युक्ति कि "युद्ध इतना गम्भीर विषय है कि इसे केवल सैनिकों के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता"-सरकार के रक्षा कार्य के कुशल संचालन में नागरिक तत्व की महत्व को भली-भांति प्रतिपादित करता है।

इसी रक्षा की आवश्यकता के गर्भ से रक्षा व्यवस्था का उदय माना जाता है। इसी रक्षा व्यवस्था का एक आवश्यक तत्व है- रक्षा नीति। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शान्ति और सुरक्षा की चाह ने रक्षा व्यवस्था को जन्म दिया और इसी के साथ राज्यों ने रक्षा नीति का निर्माण कर राष्ट्रीय सुरक्षा की अनिवार्यता के पक्ष में एक नवीन आयाम का सृजन किया। सच कहा जाए तो रक्षा का विस्तार राज्य के अस्तित्व, इसकी प्रभुसत्ता और इसकी स्वतन्त्रता के मूल में है और जहाँ तक एक राज्य और इसके नागरिक कानून अथवा संविधान का संबंध है, सशस्त्र सेनायें राज्य की सत्ता स्थापित करने और उसका संचालन करने की अनुमति प्रदान करके आन्तरिक शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने में सहायता करती हैं। बाह्म आक्रमण से राज्य की रक्षा का भार सशस्त्र सेनाओं पर होता है और वे ही राज्य या राष्ट्र के समुदाय में इसकी स्वतन्त्रता या प्रभुसत्ता सुरक्षित रखती है।

सभी प्राचीन ऐतिहासिक साक्ष्य इस तथ्य को एक स्वर में अंगीकार करते है कि सभ्यता जब स्वतः प्रसूत ढंग से प्रगति करती है और सचेत रूप से नियंत्रित नहीं होती तो अपने पीछे रेगिस्तान छोड़ती है। यह अक्षरशः सत्य है क्योंकि यदि समाज, राज्य और राष्ट्र तक की अवधारणा को विकसित करने वाले मानव समुदाय ने इस तथ्य का अनदेखा कर दिया होता तो पूरा समाज अव्यस्थित, अनियंत्रित तथा खून के प्यासे लोगों की बस्ती या नर्क ग्राम के रूप में दिखाई देता। मानव ने अपने बुद्धि विवेक से विकास की ज्योति जलायी और प्रगति, शान्ति और सुरक्षा की मंगलकामना की।

भारत भूमि पर जन्मे कूटनीति, छदम् नीति एवं राजनीति के महान आचार्य कौटिल्य ने यह स्वीकार किया है कि बाह्म आक्रमणों से देश की रक्षा सशक्त सेना एवं नीति के सही क्रियान्वयन पर निर्भर करती है। कौटिल्य ने प्रशासनिक कार्य की सेना पर निर्भरता को सबल आधार प्रदान करने के लिए ज्ञान विज्ञान के महाकोष महाभारत का उद्धरण प्रस्तुत करते हुए कहा है कि सेना के अभाव में निश्चित ही राजकोष समाप्त हो जाएगा। महाभारत में उस स्थिति का भी बड़ा ही रोचक वर्णन है जो राज्य की स्थापना के पूर्व समाज में विद्यमान थी "जब दण्ड का अभाव था तो जनता में संकट उत्पन्न हो गया। कार्य और अकार्य, भोज्य और अभोज्य, पेय और अपेय का विवेक नष्ट हो गया था। कौन सी वस्तु अपनी है और कौन सी परायी, इसका भी भेद नहीं था। लोग हिंसा में तत्पर थे। जिस प्रकार कुत्ते माँस पर झपटते हैं, उसी प्रकार लोग एक दूसरे पर झपटते थे। बलवान निर्बलों को मारते थे। समाज में मर्यादा नहीं थी। अतः ऐसी स्थिति को समाप्त करके शान्ति एवं मर्यादा की स्थापना के लिए ही राज्य का उदय हुआ। यह कहना सर्वथा न्यायसंगत होगा कि रक्षा करने की क्षमता राज्य के अस्तित्व से संबंधित है तथा रक्षा का अधिकार एवं उत्तरदायित्व राज्य का एक आवश्यक कार्य ही नहीं बल्कि असंदिग्ध लक्षण भी है। उल्लेखनीय है कि शक्ति की आवश्यकता को सभ्यता के प्रारम्भ से ही किसी न किसी रूप में सर्वथा स्वीकारा गया है। हाब्स ने भी अपनी लेवियाथन में वस्तु जगत की अपनी संकल्पना में यह कहकर कि तलवार के बिना प्रसंविदायें कोरे शब्द मात्र हैं और मनुष्य को बांधने में अशक्त है, शक्ति की आवश्यकता पर बल दिया है।

अनेक बातों में सर्वथा भिन्न होने पर भी सभी राजनीतिक संगठनों का सामान्य लक्षण सशस्त्र सेनाओं की आवश्यकता है। जहाँ तक जनजातियों, नगरों, असभ्य सामन्ती समाजों और आधुनिक राज्यों ने अपने स्वतंत्र अस्तित्व का दावा किया है, उन्होंने स्थायी पेशेवर सेना, वेतनभोगी सेना अथवा सभी नागरिकों की अनिवार्य सैनिक भर्ती तथा कुशल रक्षा नीति द्वारा अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध किया है। यह नितान्त सत्य है कि जिस धरती पर मानव का जन्म होता है उस धरती की रक्षा के लिए वह जीवन पर्यन्त कटिबद्ध रहता है।

आज जब सारे विश्व में महाप्रलय उत्पन्न करने वाले प्रलयकारी शस्त्र इस्तेमाल के इन्तजार में लगे हुए हैं, निश्चित रूप से शक्तिकामी, राष्ट्रों का अधिक चिन्तित होना स्वाभाविक ही है। यद्यपि शान्तिप्रिय तथा अन्य नवोदित राष्ट्र चिन्तित अवश्य हैं किन्तु वे यह मानकर चलने लगे हैं कि मौत केवल अब उनके ही दरवाजों पर दस्तक नहीं देगी बल्कि सबसे पहले उन दरवाजों को खटखटायेगी जो अपने को मौत का सौदागर, महाविनाश के बादशाह तथा लड़ाकू सम्राट बनने के नशे में चूर हैं।

विश्व आशावादी है। अतः आंतक से घिरे युद्ध पीड़ित संसार के लगभग सभी राष्ट्र शान्ति और सुरक्षा के लिए रक्षा नीति के माध्यम से अपने देश की रक्षा पंक्ति को सुदृढ़ बनाने में सदा से ही लगे रहे है। यह सत्य है कि आणविक आयुधों एवं अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्रों के विकास ने सामरिक विचारों में पर्याप्त संशोधन कर दिया है। नवीनतम आविष्कारों के कारण लोकतंत्रीय देशों की रक्षा करना और भी कठिन हो गया है और उसने ऐसे सर्वाधिकारवादी सैन्यीकृत राष्ट्र को होने वाले लाभ की ओर आकर्षित किया है जिसमें प्राथमिक सैन्यीकरण के लिए व्यवहारतः नगण्य समय की आवश्यकता होती है। यदि हम इस बात को ध्यान में रखें की युद्ध बार-बार होते हैं और इनसे बचे रहना कठिन है तो यह लाभ कोई कम नहीं है। अन्य दृष्टि से मुसोलिनी के इस कथन का कि "पुरूष के जीवन में युद्ध का वही स्थान है जो स्त्री के जीवन में मातृत्व का" भले ही महत्व न हो किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से इसमें कुछ न कुछ सत्यता अवश्य है। ऐसी स्थिति में यह कहना भी उचित ही होगा की राष्ट्र की रक्षा एवं स्वतंत्रता के लिए सशस्त्र सेनायें राष्ट्र का न केवल अंतिम शस्त्र हैं बल्कि इसका आवश्यक साधन भी है क्योंकि इनके अभाव में राष्ट्र का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है।

इसमें सन्देह नहीं की शक्ति ही आज वह धुरी बनी हुई है जो राष्ट्र की सुरक्षा और अखण्डता को बनाए रखने की एक अनिवार्य शर्त है। आइए, भारत को उदाहरण मानकर इस संदर्भ में विचार करें। जहां तक भारत का प्रश्न है, भारत की रक्षा नीति का उद्देश्य इस उपमहाद्वीप के विभिन्न देशों के साथ पारस्परिक सहयोग और समझौतों के द्वारा शान्ति को बढ़ावा और उसे स्थायित्व देना है तथा साथ ही साथ आक्रमण के खिलाफ अपने बचाव के लिए रक्षा सेनाओं को सुसज्जित एवं प्रशिक्षित किये रखना है। हमारी यह नीति राष्ट्रीय हित के पक्ष में हैं। हमने गत तीन-चार युद्धों से यह सबक सीखा है कि अन्ततः सशक्त रक्षा नीति और हमारी रक्षा तैयारी अथवा शक्ति ही काम आती है। 1962 में हमने चीन से जो मात खायी उसका एकमात्र कारण यही था कि हमारी सेनाओं के पास बाबा आदम के जमाने की 303 राइफलें ही थीं। हमारे जवान विश्व भर में अपने सर्वश्रेष्ठ मनोबल एवं वीरता के गुणों के लिए प्रसिद्ध है, पर वे बेचारे मोर्चों पर आधुनिक शस्त्रों तथा सामरिक साधनों के अभाव में क्या करते? 1965 में भारत-पाक युद्ध के समय कुशल रक्षा नीति एंव सैन्य क्षमता के विकास ने ही हमें विजय दिलायी। 1971 के युद्ध में 1965 की विजय की तुलना में भारत ने न्याय का समर्थन करते हुए आदर्शों की महानता का जो कीर्तिमान स्थापित किया वह इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ है। यद्यपि युद्ध जब और जहाँ हो विनाशकारी और निन्द्य होता है और इस युद्ध में भारत को भीषण क्षति उठानी पड़ी, पर कुछ युद्ध ऐसे होते हैं जिनका परिणाम अन्ततः मानवता और राष्ट्र के दीर्घकालीन हित में होता है। 1971 का यह युद्ध ऐसा ही धर्म युद्ध प्रमाणित हुआ।

अमेरीका, रूस और चीन विश्व राजनीति के शक्ति गुट के कर्णधार बने हुए हैं। विश्व के अधिकांश देश इनसे प्रभावित है। फिर भी ये सभी अपनी रक्षा नीति को अधिक से अधिक प्रभावकारी बनाने की उधेड़बुन में हर पल लगे रहते है। यह धुरव सत्य है कि किसी भी देश की रक्षा संबंधी नीतियाँ और निर्णय उसको होने वाले खतरे के बोध पर निर्भर करते हैं।

रक्षा नीति को प्रभावित करने वाले तत्व

मेरी दृष्टि में विश्व का कोई भी देश ऐसा नहीं दिखाई देता जिसे अपने भविष्य के संबंध में चिन्ता न रही हो। वर्तमान विश्व के वे देश जिनके पास प्रक्षेपास्त्र तथा परमाणु अस्त्रों के अखण्ड भण्डार हैं वे भी अपनी सुरक्षा के प्रति चिन्तित हैं। सभी इस तथ्य से परिचित है कि राष्ट्र की सुरक्षा के लिए हर सम्भव प्रयास करना महत्वपूर्ण ही नहीं बल्कि एक आग्रही आवश्यकता है। यद्यपि महाशक्तियाँ, जो अपने प्रभुतव तथा विस्तार के लिए कुछ भी कर गुजरने को तत्पर है, को छोड़कर अधिकांश देशों को युद्ध के लिए नहीं बल्कि अपने देश की सुरक्षा के लिए सैन्य शक्ति में वृद्धि करनी पड़ रही है। राष्ट्र की रक्षा नीति के निर्धारण का कोई निश्चित पैमाना नहीं होता। इसके लिए कुछ प्रमुख पहलुओं को ध्यान में रखना आवश्यक होता है-

1. देश का आकार,
2. आर्थिक स्थिति,
3. राजनैतिक दृष्टिकोण,

www.ignited.in

4. गुटबन्दी,

5. पड़ोसी देशों से अपने संबंध,

6. पड़ोसी देशों का सैन्य व्यय एवं सामरिक विकास,

7. अपने क्षेत्र की स्थिति।

मानव जाति के सम्मुख मौजूद फौरी महत्व की अनेक भूमण्लीय समस्याओं के समाधान में हथियारों की होड़ की सम्भव समाप्ति का महत्व साफ जाहिर है क्योंकि भूमण्ड़लीय समस्याओं-कुछ दशकों की अवधि में उद्योग की मूल तकनीकी प्रक्रियाओं का पुनर्निर्माण, ऊर्जा के नये स्त्रोतों का विकास तथा मनुष्य-प्रकृति संबंधों के क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली अन्य समस्याओं के आँशिक समाधान के लिए भी विराट साधनों की आवश्यकता पड़ेगी और उन्हे सैनिक उद्देश्यों को हटाकर ही प्राप्त किया जा सकता है। जिस एकमात्र तरीके से ऐसा किया जा सकता है, वह है शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धान्तों का कार्यान्वयन, शान्ति की बुनयाद का दृढ़ीकरण और हथियारों की होड़ की समाप्ति।

संयुक्त राष्ट्र के विशेषज्ञों ने यह अनुमान लगाया है, कि दुनिया के सैनिक व्यय के एक बड़े भाग को अन्य क्षेत्रों में पूँजी निवेश के लिए लगा देने से आर्थिक वृद्धि की दर में 1-2 प्रतिशत की वृद्धि हो सकती है। अपने अध्ययन के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ वि विश्व के समस्त जनगण की अपनी भौतिक व आध्यात्मिक सम्पदा को विवेकहीन बर्बादी में डालने वाली युद्ध की तैयारियाँ भविष्य का दिशा निर्देश नहीं बल्कि शान्ति का सुदृढ़ीकरण ही भविष्य का मार्ग दर्शन है।

जहाँ तक शान्तिप्रिय देशों का प्रश्न है, उनकी रक्षा नीति की संकल्पना मानव जाति की सुरक्षा तथा शान्ति की प्राप्ति के लिए एक दूरगामी कार्यक्रम है जबकि महाशक्तियों की रक्षा नीति का उद्देश्य एक प्रकार से युद्ध की तैयारी के साथ तनाव शैथिल्य को अप्रभावी बना देना, शीत युद्ध की परिधि को विश्व के कोने-कोने तक फैलाना तथा शान्तिप्रिय देशों को आर्थिक निराशा के भंवर में उलझा देना है। यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि महाशक्तियों का यह दावा कि हथियारों की होड़ बेरोजगारी की समस्या को हल करने में मदद कर रही है, निराधार सिद्ध हो चुका है। यदि विश्व शान्ति के सपने को सच बनाना है तो सभी देशों, चाहे वे छोटे हों, मझोले हों या महाशक्ति हों, को यह मानकर चलना होगा कि रक्षा नीति को रक्षा के दायरे तक ही सीमित रखना मानव जाति के लिए सुखद है। मनमाने ढंग से युद्ध की तैयारियाँ करके मानव जाति के अस्तित्व को ही संकट में डालना हरगिज बुद्धिमानी का सूचक नहीं माना जाएगा। यदि रक्षा के शन्तिकामी दृष्टिकोणों पर अमल नहीं किया गया तो आने वाली पीढ़ियाँ अपने भाग्य को कोसेगी और अपने पूर्वजों को श्रद्धांजलि अर्पित करने की बात तो दूर रही, उन्हे याद कर पलकें भिगोने को भी तैयार नहीं होगी।

स्मरण रखना चाहिए कि संहारक आयुन्ध रक्षा के सभी साधनों से कहीं अधिक विकसित हो चुके हैं और एक सर्वव्यापी युद्ध में उनके प्रयोग से न केवल युद्धकारी दोनों पक्षों का विनाश होगा वरन् मानव सभ्यता का ही अन्त हो जाएगा। एक प्रसंग में यह भी सुविदित है कि शीघ्रमामी आयुधों, निर्देशित प्रक्षेपास्त्रों और अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्रों के आविष्कार के कारण राष्ट्रीय रक्षा का स्थान अब अन्तर्राष्ट्रीय रक्षा ने लिया है और भौगोलिक सीमाबन्द राज्यों के सैन्य समर नीति विशारदों के मतानुसार रक्षा का यही उपाय प्रभावी हो सकता है।

वास्तव में बीती सहस्त्राब्दी का पर्याय है 'बहुआयामी अतिरिक्त और बहुरूपी युद्ध'। एक हजार सालों के युद्धों का इतिहास यह दर्शाता है कि इस दौरान नई प्रौद्योगिकी के विस्फोट हुए, राष्ट्रों में मूल व अतिरिक्त उत्पाद को हड़पने की फिर होड़ लगी, साम्राज्यवादी-उपनिवेशवादी युद्ध अभियान चले, व्यापक जनसंहारक हथियारों का जन्म हुआ और इसके समानान्तर मानव जिजीविषा में वृद्धि हुई। इस सहस्त्राब्दी के शक्तिशाली गिद्धों ने अतिरिक्त उत्पाद पर कब्जा करने के लिए लाखों करोड़ों इन्सानों के कपालों से खून पीया। एशिया और अफ्रीका को रौंदा गया। इस्लामी व ईसाई साम्राज्य, बरतानिया साम्राज्य आदि ने युद्धों का नया इतिहास रचा। श्वेत साम्राज्यवादियों ने अमरीकी क्षेत्र के मूल आदिवासियों के दशकों तक नरसंहार होते रहे। युद्धों के माध्यम से इन्होंने उनका इतिहास हड़प् लिया है। अब केवल श्वेतों का इतिहास ही चमकता है। भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की करतूतें इससे भिन्न नहीं रही है यह अलग बात है कि इस देश में बरतानिया उपनिवेशी भारतीयों का सफाया अभियान नहीं चला सके।

अतीत का यह अनुभव ही भारत के 'रक्षा मिशन' में रक्षा नीति को अधिक से अधिक प्रभावी बनाने के लिए प्रेरित करता है जिसके लिए हमारे देश के नीति निर्णायक तथा रक्षा एवं समर विशेषज्ञ समान रूप से सक्रिय है।

www.ignited.in

सन्दर्भ सूची:

1 दिनेश चन्द्र पाण्डे, द्वि-ध्रुवीयता में गुटनिरपेक्षता, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1978, पृ० 29.

2 पी.एस. जयराम, इण्डियाज नेश्नल सिक्योरिटी एण्ड फौरेन पोलिसी, ए.बी.सी. पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1987, पृ० 53

3 डॉ. अशोक कुमार सिंह: आधुनिक राज्य का रक्षा तन्त्र।

4 आर.एस. पाण्डेय, भारत के लिए हिन्द महासागर की सामरिक चुनौतियाँ- एक मूल्याकंन प्रतियोगिता दपर्ण, मई 2007, पृ० 186.

5 यू.आर.घई एवं के.के. घई इण्टरनेश्नल पॉलिटिक्स, न्यू एकेडेमिक पब्लिशिंग कंपनी, जालन्धर, 2010, पृ० 202.

6 आर.एस. पाण्डेय, भारत के लिए हिन्द महासागर की सामरिक चुनौतियाँ- एक मूल्याकंन, प्रतियोगिता दर्पण, नई दिल्ली, मई 2007, पृ० 38.

7 वही, पृ0 39.

8 आर. एस यादव भारत की विदेशनीति: एक विश्लेषण, किताब महल, इलाहबाद, 2002, पृ 73.

9 वाजपेयी, अरूणादेय, "समकालीन विश्व एवं भारत प्रमुख मुद्दे और चुनौतियाँ, पियर्सन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

10 फडिया बी॰ एल॰, "अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति", साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2012

11 गर्ग सुषमा, "अब्राष्ट्रीय राजनीति", अग्रवाल पब्लिकेशनस, आगरा, 2014

Corresponding Author

Naresh Kumar*

M.A. in Political Science (UGC NET)

neresh.mehra8800@gmail.com